शोध मंथन, Impact Factor 5.463 (SJIF), UGC No. 40908 ISSN: (P): 0976-5255, (e) : 2454-339X,
Vol. X, No. 1, pp (153-156), Jan-March 2019 

# पितृत्व के बदलते प्रतिमानः लैंगिक संदर्श

**डॉ0 अपर्णा जोशी**
*एसो0 प्रोफे0, समाजशास्त्र विभाग*
*जी0डी0एच0जी0 कालेज, मुरादाबाद*
*ई–मेल – ajgdhmbd@gmail.com*

## सारांश

*भारतीय समाज पुरूष प्रधान एवं पितृसत्तात्मक है जिसके कारण पारिवारिक शक्ति व सत्ता का वितरण असमान होने के साथ पारिवारिक भूमिकाओं में लैंगिकता का गहरा प्रभाव है। परिवार में पिता के रूप में पुरूष की भूमिका पर 1990 के दशक से अध्ययन प्रारम्भ हुए किन्तु अभी भी इस विषय पर शोध में कुछ विशेष उपलब्धि भारतीय सन्दर्भ में दिखायी नहीं देती। महिलाओं की छवि के प्रति रूढ़िबद्ध धारणा के बावजूद उनकी भूमिकाओं की पुर्नपरिभाषा की जा रही है किन्तु पुरूषों की भूमिकाओं के पुर्नमूल्यांकन व पुर्नपरिभाषा की कोई ठोस पहल होती नहीं दिखायी देती। प्रस्तुत शोध पत्र समावेशी समाज के लिए पितृत्व की अवधारणा को लैंगिक समानता के संदर्भ में विश्लेषित करने का प्रयास है।*

***मुख्य शब्द*** *– लैंगिकता, प्रजननात्मक स्वास्थ्य, पितृत्व, मातृत्व, पुर्नउत्पादकता, लैंगिक असमानता।*

## प्रस्तावना

परिवार में प्रजननात्मक स्वास्थ्य को प्राथमिकता बनाने के लिए पुरूषों की पालन पोषण में सहभागिता एक अत्यन्त आवश्यक तत्व है। प्रजननात्मक स्वास्थ्य को एक मानव अधिकार का मुद्दा मानते हुए महिलाओं के उनके शरीर पर नियन्त्रण के अधिकार को स्वीकार करते हुए यौन व्यवहार तथा उसके परिणामों पर निर्णय लेने की स्वतन्त्रता देने की आवश्यकता है, जिससे महिलाएँ अपने प्रजननात्मक स्वास्थ्य पर बिना किसी दबाव अथवा भय और हिंसा के स्वयं निर्णय ले सकें। इस प्रक्रिया में दोनों व्यस्क व्यक्तियों (पति, पत्नी) का एक–दूसरे के प्रति पारस्परिक सम्मान, सहमति तथा संयुक्त उत्तरदायित्व की भावना आवश्यक है क्योंकि एक व्यक्ति के रूप में सम्पूर्ण स्वीकृति पाने तथा स्वयं में सम्पूर्णता अनुभव करने के लिए ये सभी पूर्व आवश्यकताएँ हैं।

भारतीय समाज के पुरूष प्रधान एवं पितृ सत्तात्मक होने के कारण परिवार में आज भी सत्ता एवं शक्ति का वितरण असमान है तथा भूमिकाओं में लैंगिकता का प्रभाव काफी अर्न्तनिहित है जो सामाजिक एवं सांस्कृतिक निर्माण का हिस्सा है। सामाजीकरण के परिणामस्वरूप पुरूष व महिलाओं में अपने शरीर के प्रति दो भिन्न परिप्रेक्ष्य पाये जाते हैं। पुरूषों का सामाजीकरण उन्हें उनके शरीर के प्रति पीड़ा के लिये अभेध तथा अप्रवेश्य होने का विचार देता है वहीं महिलाएँ

स्वयं के शरीर को यौन शुचिता के कारण अनतिक्रान्त स्थल तथा पारिवारिक सम्मान के रक्षक के रूप में मानते हुए आत्मसात करती हैं। अतः प्रत्येक समाज में उसकी संस्कृति के अनुरूप शरीर की सामाजिक परिकल्पना निर्मित होती है।

## सैद्धान्तिक परिप्रेक्ष्य

1990 के दशक में परिवार में पिता की भूमिका तथा पितृत्व पर प्रभावशाली साहित्य लिखा जाना प्रारम्भ हुआ। इन प्रारम्भिक अर्न्तवैषयिक प्रयासों ने इस समस्या से जुड़े बिन्दुओं एवं सम्बद्ध जटिलताओं को स्पष्ट करने के साथ इस विषय के मूल प्रश्नों को प्रतिस्पर्धात्मक तरीकों से सम्बोधित करना आरम्भ किया। 20वीं शताब्दी के समाज में पितृत्व पर समझ विकसित एवं समृद्ध करने में उन प्रयासों को शामिल किया जा सकता है जिनके द्वारा पितृत्व को ऐतिहासिक रूप से परिवर्तनशील सामाजिक वास्तविकता के रूप में प्रस्तुत किया गया। जीविका उपार्जन तथा नैतिक नेतृत्व हमेशा से ही पुरूषों के लिए महत्वपूर्ण रहे हैं तथा 20वीं शताब्दी के मध्य से पुरूषों की लैंगिक भूमिका को अनुकरणीय तथा प्रेरणास्त्रोत के रूप में अध्ययन किया गया। नवीनतम अध्ययनों तथा विश्लेषणों ने पिता की लचीली भूमिका, पितृत्व तथा मातृत्व की सांस्कृतिक छवियों के मूलभूत अनुबंधों तथा पूर्ववर्ती कालों में पुरूष की पारिवारिक भूमिकाओं की विभिन्नता पर प्रकाश डाला गया (शरलिन 1998 : लैंब 1998)। यह अध्ययन यह भी स्पष्ट करते हैं कि परिवार में पिता की भूमिका पर ऐतिहासिक समझ अभी भी सीमित है क्योंकि इन अध्ययनों में प्रयुक्त तथ्य एवं सूचनाओं के स्त्रोत सीमित हैं तथा तत्कालीन अन्य प्रजातीय, सांस्कृतिक, आर्थिक एवं नृजातीय भिन्नता वाले समाजों का प्रतिनिधित्व इन अध्ययनों में नहीं मिलता। बर्टन एवं स्नाइडर (1998) के अनुसार ''अभी भी इस अध्ययन क्षेत्र में कुछ अधिक उपलब्धि नहीं कही जा सकती।'' इस दिशा में एक अधिक संसज्जित मूल्य निर्देशित उपागम मनोविश्लेषक एरिक एरिक्सन द्वारा प्रस्तुत पुर्नउत्पादकता (जेनरेटिविटी) की अवधारणा के आधार पर उभरा तथा स्नारे (1993) ने अपने शोध में पिताओं की गतिविधियों तथा कार्यो का विश्लेषण अगली पीढ़ी को स्थापित करने तथा उनका मार्गदर्शन करने के सन्दर्भ में किया।

## विमर्श

व्यक्ति की प्राणीशास्त्रीय पहचान उसके सामाजिक लिंग के निर्माण में महत्वपूर्ण है। 'जेन्डर एक पूरी तरह सामाजिक–सांस्कृतिक निर्मित है, जैविक नहीं। हम जन्म लेते हैं और वक्त के साथ–साथ यह सिखा दिया जाता है कि जिस लिंग में हमने जन्म लिया है उसे मंच पर क्या भूमिका अदा करनी है, उसके कास्ट्यूम क्या होंगे, और उसके संवाद क्या होंगे' (सुजाता 2019)। भारतीय समाज वर्तमान में भी महिलाओं की सीमित, सार्वजनिक भूमिका एवं दृश्यता तथा तथाकथित उत्पादन क्षेत्र में उनकी सीमित सहभागिता के लिए पितृसत्तात्मक संरचना को उत्तरदायी न मानकर महिलाओं की प्रजननात्मक भूमिकाओं अर्थात प्राणीशास्त्रीय प्रकार्यो को जिम्मेदार मानता है। इस अर्थ में समाज, राज्य तथा अन्य नियामक संस्थाएं इस संदर्भ में अपने उत्तरदायित्व से बचते हुए प्राणीशास्त्रीय सिद्धान्त को पुर्नबलित करते प्रतीत होते हैं। यह मनोवृत्ति सरकार, राज्य तथा समाज के समस्या समाधान के स्थान पर सरलता से पलायन की

ओर संकेत करती है। उनका तर्क यह है कि प्राणीशास्त्रीय रूप से प्रकृति ने महिलाओं को ही शिशुओं को जन्म देने के लिए गर्भ देकर सक्षम किया है जिसका कोई विकल्प नहीं है। लैंगिक सम्बन्धों में विषमता यौन सम्बन्धों में विषमता को जन्म देती है तथा विपरीत क्रम में प्रभावित भी करती है। सामाजिक लिंग अथवा जेन्डर स्त्रीवाचक के अर्थ में रूढ़ हो गया है तथा अधिकांशतः सामाजिक लिंग और लिंग को समानार्थी की तरह प्रयोग करने की प्रवृति समाज में पायी जाती है। लैंगिक भूमिकाओं तथा लैंगिक छवि, धारणा, प्रतीकों का निर्माण, अभिव्यक्ति, हस्तान्तरण तथा इनका आन्तरीकरण सामाजीकरण द्वारा जन्म से ही प्रारम्भ हो जाता है और दक्ष प्रयोग, प्रहस्तन, मौखिक अभिधान तथा निश्चित कार्यकलापों एवं गतिविधियों के प्रभावन तथा पहुँच द्वारा जीवनपर्यन्त इन्हें निरन्तरता देते हुए पुर्नबलित किया जाता है। अतः यह कहना अनुचित न होगा कि यदि महिलाएँ लैंगिकता में रूढ़िबद्ध हैं तो पुरूष भी इससे स्वतन्त्र नहीं हैं।

पुरूषत्व को अधिकांशतः मर्दाना एवं कठोर विशेषणों से परिभाषित किया जाता है वहीं स्त्रीत्व को कोमलता तथा भावात्मकता से। ''एक के लिए क्रोध एवं वीरता स्वाभाविक गुण हुआ और एक के लिये त्याग, भीरूता और बोधता मूल्य हुई। जिन्होंने बाहर की दुनिया को घेरा और उत्पादन के साधनों पर मालिकाना हक पाया, वे नियन्ता हो गये और जो देहरी के भीतर सिमट गये वे शासित'' (सुजाता 2019)। इस समान निर्मित अति मानवीय छवि पर खरे उतरने की चुनौती न केवल पुरूषों के लिए घातक है अपितु परिवर्तन के लिए हस्तक्षेप करने वाली नीतियों को भी नकारात्मक रूप से प्रभावित करती है क्योंकि समाज पुरूषों को स्वाभाविक रूप से इन नीतियों को तय करने के लिए आवश्यक ज्ञान और कौशल युक्त मानकर महिलाओं को हाशिए में ढकेल देता है। यदि किसी तरह कुछ महिलाएँ अपने लिए स्थान बनाने में सफल होकर नीति निर्धारण, प्रशासन या राजनीति में भूमिका निर्वहन की स्थिति में पहुँच भी जायें तो 'मर्दो के स्पेस में घुसते हुए स्त्री से अपेक्षा की ही जाती है कि वह मर्दाना लक्षणों व सोच को अपनाए' (सुजाता 2019)। इस कारण इन सीमित स्थानों पर महिला प्रतिनिधियों की उपस्थिति के उपरान्त भी नीतियाँ उनकी आवश्यकताओं के अनुरूप आकार नहीं ले पाती हैं क्योंकि पितृसत्ता अपने हितों का संरक्षण इन्हीं महिला प्रतिनिधियों के माध्यम से करती है।

पारिवारिक उत्तरदायित्वों में महिलाओं की भूमिका, पालन–पोषण तथा स्वास्थ्य सेवा में अधिकतम होने पर भी आर्थिक अवमूल्यन होने के कारण उनका योगदान समाज के मुख्य पटल से अदृश्य है। महिलाओं की छवि के प्रति रूढ़िबद्ध धारणा के बावजूद उनके लिए अवसरों में निरन्तर वृद्धि हो रही है तथा उनकी भूमिकाओं की पुर्नपरिभाषा भी की जा रही है किन्तु पुरूषों की भूमिकाओं के पुर्नमूल्यांकन और पुर्नपरिभाषा के प्रति कोई ठोस पहल होती नहीं दिखायी देती। शिशुओं को जन्म देने के प्रकार्य के अतिरिक्त पुर्नजनन से जुड़े हुए अन्य सभी प्रकार्य महिलाओं और पुरूषों के लिए परस्पर विनिमेय है। पुरूषों की छवि के प्रति कठोरता, परवाह न करने वाला, तार्किकता आदि के रूढ़िबद्ध होने से उनकी पारम्परिक छवि और भूमिकाओं को निरन्तरता मिलने के साथ उनका पुर्नबलन भी होता है। इस कारण समाज में भावनात्मक, कोमल मन वाले तथा परवाह करने वाले पुरूषों के होने पर भी रूढ़िबद्ध छवि के विपरीत जाने के कारण

उन्हें भी समाज के प्रतिघात के रूप में आलोचना, व्यंग और तिरस्कार का सामना करना पड़ता है। अतः वास्तविक परिवर्तन के लिए आवश्यक है कि इन भूमिकाओं के विनिमय के विषय में जागरूकता बढ़ाने के लिए सामाजिक विमर्श के साथ सकारात्मक संदेश का प्रसार किया जाये। नकारात्मक छवि रूढ़िबद्ध छवियों को नैरन्तर्य प्रदान कर पुरूषों के व्यवहार में परिवर्तन को कठिन बना देती है। सामाजिक प्रतिघात के भय से पुरूष बहुत बार इच्छुक होने पर भी पुर्नजनन की भूमिकाओं में सहभागी होने के लिए आवश्यक कौशल का विकास नहीं कर पाते। सरकारी नीतियॉ भी उन्हें पहल करने के अवसर सहजता से प्रदान नहीं करती जैसे अथक प्रयासों के उपरान्त अभी भी सीमित क्षेत्रों में ही पितृत्व अवकाश की सुविधा अनुमन्य की गयी है। सहभागी पालन पोषण के लिए आवश्यक है कि माता पिता दोनों ही अपनी ऊर्जा और प्रयासों का इस प्रक्रिया में संयुक्त निवेश करें जिससे दोनों ही पुर्नजनन के लिए आवश्यक कौशल विकसित कर सकें। यह भी आवश्यक है कि समाज में पितृत्व को मातृत्व के समान ही पारस्परिक रूप से सन्तुष्टिदायक अनुभव के रूप में प्रस्तुत किया जाये न कि एक स्त्रैण अनुभव या गतिविधि के रूप में अवमूल्यित किया जाये।

पारम्परिक, सांस्कृतिक, लैंगिक शक्ति वितरण एवं सत्ता में परिवर्तन से ही समाज एवं परिवार में व्याप्त लैंगिक असमानता, दूरी और हिंसा आदि का समाधान करने के मौलिक विचार उत्पन्न होंगे तथा भविष्य के समाज को समानतामूलक और अधिक समावेशी बनाया जा सकेगा।

## सन्दर्भ ग्रंथ

1. शरलिन, ए0जे0, *आन द फ्लैक्सिविलिटी आफ फादरहुड,* पृ0 **41–46.**
2. लैंब एम0ई0, *फादरहुड दैन एण्ड नाऊ, ए0 वूथ तथा क्राउटर (संपा) मैन इन फैमिलीज : व्हेन डू दे गेट इनवाल्वड ?* माहवाह, न्यू जर्सी : अर्लवॉम 1998 पृ0 **47–52.**
3. वर्टन एण्ड स्नाइडर टी0आर0, *द इनविजिविल मैन रिविजिटेड ए0 वूथ तथा क्राउटर (संपा) मैन इन फैमिलीज : व्हेन डू दे गेट इनवाल्वड ?* माहवाह, न्यू जर्सी : अर्लवॉम 1998 पृ0 **31–39.**
4. स्नारे जे0, *हाऊ फादरस केयर फार द नैक्सट जैनरेशन,* केम्ब्रिज, हावर्ड यूनि0 प्रेस 1993.
5. सुजाता, *स्त्री निर्मिति,* नई दिल्ली समसामायिक पैपरबैक्स 2019 पृ0 **67.**
6. पूर्वोक्त पृ0 **66.**
7. पूर्वोक्त पृ0 137.